International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 30-05-2021, Accepted: 12-06-2021, Published: 30-06-2021
Volume 7, Issue 3, 2021, Page No. 149-153

भारतीय दर्शन के सिद्धांत

हर्षवर्धन गोस्वामी
एसोसिएट प्रोफेसर, एम. एम. एच कालेज, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश
यद्यपि वैदिक दर्शनों में एकता और उनके समन्वय का सिद्धांत प्रांरभ से ही स्थापित किया है। तार्किक भारतीय दर्शनों में पारस्पारिक अंतद्वद अवश्य देखने को मिलता है किन्तु लक्ष्य सभी दर्शनों का एक ही हैं वैदिक दर्शन समन्वय प्रधान है। विभिन्न अवधारणाओं, भिन्न–भिन्न विचारधाराओं धर्मों एवं जीवन के समस्त व्यवहारो का एकमात्र लक्ष्य ब्रह्मन ही है। "ब्रहनवल्लक्ष्यमुच्सते।" सांख्य, न्याय, मीमांसा आदि षट्दर्शनों की प्रवृत्ति इसी ब्रह्म की ओर रहती है। इसी ब्रह्म की भावना में ही अनेकत्व में एकत्व के दर्शन किये जाते है। यही भारतीय दर्शन का उद्देश्य है। क्योंकि भारतीय दर्शन विभिन्न दर्शन की विचारधाराओं का समष्टि संग्रह है। भारतीय दर्शन अपनी विवेचनात्मकता के लिए प्रचलित है। भारतीय दर्शन में व्यवहारिक के लिए प्रमाणों के महत्व को स्पष्टतः स्वीकार किया। भारतीय दर्शन का मुख्य उद्देश्य जीवन की शास्वत व्याख्या करना है। मानव मस्तिष्क अनवरत् विभिन्न रूप से विचारशील रहता है। अनवरत चिंतन की कला का नाम दर्शन है। तो यह तो निश्चित है कि दर्शन का अभ्युदय कुछ संदिग्ध प्रश्नों के समानार्थ ही हुआ है। समस्त भूमंडल के मनिषियों की दृष्टि में जगत् यदि दुःख मात्र पूर्ण नहीं है, कम से कम दुःखमय तो अवश्य ही है। भारतीय दर्शनिक पंरपरा में इस संसार की दुःख, ममता और भी स्पष्ट है।

मूल शब्दः सांख्य, न्याय, मीमांसा, दर्शन, नास्तिक, धर्मशास्त्र।

प्रस्तावना
भारतीय पंरपरा सर्वप्राचीन पंरपरा है और प्रारंभ से ही इसके दार्शनिक सिद्धांत व्यापक रहे है। किसी भी दर्शन के अनुयायी चाहे वह वेदान्ती हो मीमांसक आदि हो या दार्शनिक क्यों न तो? सभी के लिए ''बृहदारण्यकोपनिषद'' की प्रार्थना स्तवनीय है।

''असतो मा सद्गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्माडमृतम गमय।।''

भगवान बुद्ध ने भी अपने चार आर्य सत्यों में ''सर्व दुःख दुःखमा'' को अन्यतम् माना है।

सांख्यकारिका में भी
"दुःखत्रयाभिद्यातात् जिज्ञासा तद्द्यातके हेतो।" में भी भारतीय दर्शन की मानव जीवन में उपदेयीता सिद्ध होती है। क्योंकि मानवीय प्रवृत्ति सुख आनंद की ओर निरंतर बढ़ता रहता है।
व्यवहारिक दृष्टि से यदि हम विचार करे तो दुःख के दो कारण प्रतीत होते है।[1] इप्सित वस्तु की अप्राप्ति तथा ज्ञान का अभाव। उदर की पूर्ति स्वादिष्ट भोजन से लेती है। स्त्री संसर्ग से काम वासना की पुर्ति होती है। इत्यादि जितने भी भौतिक संसाधन है जो क्षणिक आनंद के स्त्रोत है। भोजन तथा स्त्री आदि की प्राप्ति नहीं होती है तो हमें दुःख की कटु अनुभूति होती है। छः पदार्थो की ओर ही हमारा आकर्षण अथवा आसक्त होना, ही ज्ञान अभाव है अर्थात ज्ञान ही अज्ञानता ही हमें इन इन्द्रियों की सुखों की ओर उन्मुख कराती है। किसी दार्शनिक ने ठीक ही कहा है–

''जगातोऽयं दुःखमूलम्।''

यह कहकर इस नाशवान जगत् को समस्त दुःखों का समष्टि केंद्र बना दिया गया है। यद्यपि उपर्युक्त युक्ति से हम पूरी तरह सहमत नहीं है। क्योंकि यदि जगत को ही दुःख का कारण मान लिया जाए तो क्या ब्रह्मा की सांसारिक सृष्टि दुःखमय है अथवा क्या जगतकर्ता सृष्टि की निर्माण करते समय स्वयं दुःखी थे तो उन्होने दुःखमय जगत की संरचना कर डाली। संभवतः इन्ही प्रश्नों के समानार्थ हमारे मनिषियों ने, सुख खोजने की कला में अभूतपूर्व मार्गदर्शन किया है। समस्त दुःखों के समानार्थ (समाधान) ही दर्शन का अवतरण है। दर्शन के लिए चैपसवेवचील शब्द का प्रयोग हुआ है। जिसका अर्थ है विद्या अनुराग, शास्वत सत्ताप्रतिभक्ति। बृहदारण्यकोपनिषद् में लिखा है–
''अयमात्मा दृष्टव्यः श्रेतव्यः मान्तव्यः निदध्यासितव्यः।'' अर्थात मनुष्य को आत्तत्व का दर्शन श्रवण, मनन और निदिध्यासन करना चाहिए। अनुभव और ध्यानादि से ही आत्मज्ञान का बोध होता है। वस्तुतः यही बोधित ज्ञान समष्टिस्वरूप दर्शन है यदि दर्शन पद को व्युक्तानुसार समझने का प्रयास करते हैं तो–

''दृश्यते यथार्थ त्वमनेनेति दर्शनम्।।''

जिसके द्वारा जीवन के स्वरूप को शास्वत शक्ति की दृष्टि से देखा जाए। विभिन्न जिज्ञासाओं का समाधान किया जाए उसे दर्शन कहते है।

शब्दकोष के अनुसार–

''दृश इत्यास्मात् धातोः ल्युट् प्रत्यये।
सति दर्शन शब्दः निष्पद्यते।।''

जिसका शाब्दिक अर्थ है देखना, दर्शन करना आदि। अथवा दर्शन का शाब्दिक अर्थ है परम् सत्ता का साक्षात्कार करना।
यद्यपि सनातन संस्कृति में ब्राह्मणों के लिये वेद को अपना धर्मशास्त्र, ग्राह्यम है। इसलिये उन्होनें दर्शन को दो भागो में विभक्त कर दिया गया है। जिस दर्शन में वेद को स्वीकार किया गया है उसे आस्तिक दर्शन की संज्ञा से व्यवहृत्त किया गया है।

और जिस दर्शन में वेद को धर्म ग्रंथ विशेष नहीं माना है उसे नास्तिक की संज्ञा दी गई है। यहां नास्तिक का अर्थ ईश्वर निदंक नहीं है वस्तुतः आस्तिक का अर्थ सनातन धर्मों और नास्तिक से अर्थ होता है पंरपरा विरोधी जिसे अंग्रेजी में ''अनऑर्थडॉक्स'' कहते है। वस्तुतः चाहे वह आस्तिक दर्शन हो या नास्तिक दर्शन। समस्त भारतीय दर्शन का उद्देश्य जीवन की यथार्थ व्याख्या प्रस्तुत करना है। पाश्चात्य् दर्शन की भांति वह मनोविनोदी अथवा बौद्धिक व्यायाम या कोतुहल विषय नहीं है।

भारतवर्ष में दर्शन अथवा धर्म का शास्वत संबंध स्वीकार किया गया है। एक बीना दूसरा अपूर्ण है अथवा इन दोनों का भारतीय जीवन से साक्षात् संबंध है। आध्यात्मिक, आदिदैविक और आदिभौतिक त्रिविध तापों में तापित मनुष्य को चिरशांति प्रदान करने के लिए अर्थात एकांतिक और आत्यान्तिक दुःख की निवृत्ति के लिये ही दर्शन शास्त्र का उदय हुआ है।

इसलिये प्रत्येक भारतीय धर्म की प्रतिष्ठा दर्शनिक अनुभूतियों के आधार पर प्रतिष्ठित है। भारतीय धर्म प्रमाण जनता के लिए दर्शनशास्त्र का मूल्य अधिक है। दर्शनशास्त्र भारतीय संस्कृति की अमूल्य निधी है। मानवीय जीवन को परम सत्ता से साक्षात्कार करने के लिये सीधी पगडंडी है।

दर्शन का अर्थ एवं स्वरूप

दर्शन शब्द की शास्त्रकारों ने अनेक प्रकार की व्याख्यायें और अन्य विचारकों ने भी दर्शन शब्द को अपने–अपने ढंग से अर्थ देने का प्रयास किया है। कुछ प्रचलित अर्थ निम्नवत् है।

''दृश्यते अनेन इति दर्शनम्।''

दर्शन शब्द संस्कृत के 'दृश' धातु के लिट् प्रत्यय लगाने से निष्पन्न होता है। कोषों में जानना, समझना, प्रत्यक्ष जानना, निरिक्षण करना, सम्मान सहित देखना आदि इसके अर्थ है।

उपरोक्त दिये गये सूत्र का अर्थ है ''जिसके द्वारा देखा जाए वह दर्शन है।'' यह देखना सामान्य रूप से स्थूल नेत्रों से देखना होता है। तो विशेष रूप से सूक्ष्म नेत्रों से, सूक्ष्म नेत्रों को दिव्यचक्षु, ज्ञानचक्षु और प्रजाचक्षु भी कहते है। स्थूल और सूक्ष्म दोनों ही प्रकार के पदार्थ दर्शन में अध्ययन का विषय बनाते हैं। इस अध्ययन का मूल जिज्ञासा है। जैसे– वह दृष्यमान जगत् क्या है? इसे किसने बनाया? इसका सच्चा स्वरूप क्या है? कब, कैसे और कहां से इसकी उत्पत्ति हुई? मैं कौन हूँ? कहां से आया हूँ? कहॉ जाना है? किस पदार्थ को देखा जाए? वस्तु का तात्विक रूप देखने समझने की चीज है। किन्तु वह क्या है? जीवन का उद्देश्य क्या है? हमारा कर्तव्य क्या है? जीवन को सुचारू रूप से चलाने के लिये सुंदर साधन या मार्ग कौन सा है? इन सब प्रश्नों का समुचित उत्तर देखने, खोजने, निरिक्षण करने का नाम दर्शन है। आत्म दर्शन, सम्यक् दर्शन जैसे शब्द दर्शन के इसी अभिप्राय को बताते है।

दर्शन की एक संज्ञा शास्त्र भी है चारों वेद, छः शास्त्र, युक्ति में छहों शास्त्र का अर्थ है। शास्त्र शब्द की उत्पत्ति दो धातुओं से है। ''शास्'' इसका अर्थ है आज्ञा करना। ''शंस्'' अर्थात वर्णन करना।

शासनात् शंसनात् शास्त्रं शास्त्रमित्याभिधीयते।
शासनं द्विविध प्रोक्तं शास्त्रलक्षणवेदिभिः।
शसंनं भूत वस्त्केविषय न क्रियापरम्।।

धर्म और कर्तव्य का निषेध करने अधर्म तथा अकर्तव्य का विरोध करने के कारण वेद से स्मृतियों तक सभी धर्मशास्त्र 'शस्' अर्थ में है। 'शस्' धातु से शास्त्र शब्द ही दर्शन का बोधक है। जिसके द्वारा वस्तु के सच्चे स्वरूप का वर्णन किया जाता है। दर्शन के अंतर्गत सूक्ष्म, स्थूल सभी तत्वों को जानने का प्रयास किया जाता है। अतः दर्शन शब्द का प्रयोग स्थूल या सूक्ष्म और भौतिक या आध्यात्मिक दोनों ही अर्थों में लिया है। व्यवहारिक दृष्टि से उन तत्वों को सिद्ध कराने वाले तर्क और विपक्ष का खंडन करने वाली युक्तियां ही दर्शन के अंतर्गत आ जाती हैं। Philosophy दर्शन के लिये अग्रेंजी शब्द है। यह शब्द दो ग्रीक शब्दों के मेल से बना है। Philo (फ्लॉस) प्रेम और अनुराग और Sophy (सॉफी) विद्या। अतः इस शब्द का अर्थ है विद्या का प्रेम या विद्यानुराग। आरंभ में इस शब्द में विज्ञान भी समाहित था, इसलिये ग्रीक के प्राचीन चैपसवेवचीमत अरस्तू, पाईथागोरस आदि दार्शनिक और वैज्ञानिक दोनों ही थे। परंतु बाद में पाश्चात्य देशों में दर्शन तथा विज्ञान को पार्थक्य स्पष्ट कर दिया है। इस प्रकार चैपसवेवचील का अर्थ सीमित हो गया है।

दर्शन अर्थात अध्यात्म दर्शन के लिये आजकल एक और शब्द अधिकांशतः प्रयुक्त हो रहा है वह है अध्यात्म। इसके अंतर्गत आत्मा, परमात्मा, ब्रह्म, जीवन, मृत्यु, कर्म सिद्धांत, नैतिकता, विचारादि का वर्णन किया गया है।

भारतीय दर्शन के मुख्य सिद्धांत

भारतीय जीवन में चिंतन की पुराकालीन परंपरा का कोई आदि नहीं है। किसी तिथि विशेष या काल विशेष की दृष्टि से उनकी सीमा को निश्चित नहीं किया जा सकता। हमारे अनुसंधामति ऋषि–कुलों में दीर्घकाल तक ज्ञान की उपासना करते हुए जो तथ्य तथा अनुंभव अर्जित किये गये उन्हीं का संगत दर्शन ग्रथों में देखने को मिलता है।

ये ऋषि आत्मदर्शी थे, तत्वदर्शी थे और जीवन तथा जगत की रहस्यमयता को भांली–भांति जानते थे। इन ऋषियों के विभिन्न कुलों का वर्णन वेदों से लेकर पुराणों तक फैले हुए, बहुसंख्यक प्राचीन ग्रंथों से किया गया है। ऋषियों के मुख्य दो सम्प्रदाय थे– प्रवृत्तिधर्मानुयायी और निवृत्तिधर्मानुयायी। कर्मकाण्ड के प्रर्वतक तथा कर्मकाण्ड में कहे गये मंत्रों के दृष्टा या रचियता प्रवृत्तिधर्मानुयायी और मोक्ष के साक्षात्कार या तद्विषयक ज्ञान के प्रतिपादक निवृत्तिधर्मा ऋषि कहलाये। संहिता, ब्राम्हण, उपनिषद् आदि के मोक्षविषयक ज्ञान के प्रतिपादक निवृत्तिधर्मा ऋषियों में वाक्, आभृणी, जनक विदेह, अजातशत्रु, याज्ञवल्क्य और कपिल प्रमुख थे।

निवृत्तिधर्मानुयायी ऋषियों के भी दो संप्रदाय हुए– आर्ष और अनार्ष। आर्ष के अंतर्गत सांख्य, न्याय, वैशेषिक, योग, मीमांसा तथा वेदान्त की ओर अनार्ष में जैन बौद्ध दर्शनों की गणना होती है। अपने मूल रूप से एक ही नदी की दो धारायें होने के कारण आर्ष और अनार्थ दोनों संप्रदायों का एक ही चरम उद्देश्य है, परम् पद की उपलब्ध।

तात्पर्य भेद से भारतीय दर्शन दो प्रमुख संप्रदायों में अपना विकास करता आया है। वे दो संप्रदाय है, नास्तिक और आस्तिक। तीन नास्तिक दर्शन हैं और छः आस्तिक दर्शन। नास्तिक दर्शन में ही–चार्वाक, जैन, बौद्ध। छः आस्तिक दर्शनों के नाम है– न्याय, वैशिषक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त।

ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर प्रतीत होता है। परस्पर विरोधी नास्तिक और आस्तिक दोनों संप्रदायों के मूल सिद्धांत प्राचीनतम् है।

वास्ताविकतावादी आचार्य चार्वाक का नाम प्राचीनतम ग्रंथों में उपलब्ध होता है। ''महाभारत'' में उनकी चर्चा है। चार्वाक से भी पहले बृहस्पति हो चुके थे, जिनको चार्वाक ने प्रमाण माना है। उनके सिद्धातों का उल्लेख किया है। आचार्य बृहस्पति महाभारत काल के पूर्व हुए। इन दोनों आचार्यों को 500 ई.पू. से पहले रखने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये।

बौद्धों के चार दर्शन संप्रदाय और जैनों का आर्हत दर्शन अपने को अनादि मानते है। 'श्रीमद्भागवत्' में जिन भगवान ऋषभ देव

को एक अवतार के रूप में स्मरण किया गया है, जैन उनको अपना प्रथम तीर्थंकर मानते है। इसी प्रकार बौद्धों का कहना है कि त्रेतायुग के दशरथी राम, बुद्ध के ही एक अवतार थे और सिद्धार्थ बुद्ध उन्हीं बुद्ध के अंतिम अवतार हुए।

इस दृष्टि से यह कहना कि कौन सा दर्शन सर्वाधिक प्राचीन है, बहुत कठिन अथवा असंभव है। वस्तुतः इन दर्शन संप्रदायों की सैद्धांतिक स्थापनाऐं परस्पर ऐसी गुंथी हुई है कि उनका मूल शोधकर उनकी प्राचीनता के संबंध में किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुॅचना असंभव है। आस्तिकवाद और नास्तिकवाद पर मूल रूप से जो सूत्रग्रन्थ लिखे गये थे, वे अति प्राचीन होने पर भी भले ही आगे–पीछे रखे जा सकते है, किन्तु उनमें जिन विचारों को ग्रंथित किया गया है, निश्चित ही उनको आगे–पीछे नहीं रखा जा सकता है।

दर्शनशास्त्र के संबंध में 'महाभारत' में कुछ ऐतिहासिक सूत्र देखने को मिलते है। उसका समग्र शांतिपूर्ण ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े महत्व का है। इस पर्व में भीष्म पितामह ने महाभारत कालीन पांच संप्रदायों का उल्लेख किया है, जिनके नाम हैः सांख्य, योग, वेद, पाशुपत और पांचरात्र। महाभारत के इस प्रसंग में अनिश्वरवादी दर्शन सांख्य और ईश्वरवादी दर्शन योग के विषय में जो कुछ कहा गया है, प्रचलित दोनों दर्शनों से उनका मेल नहीं बैठता। पाशुमत मंत के प्रर्वतक शैव थे और वेदमत, उपनिषद् ग्रंथों के तत्वज्ञान पर आधारित थे।

इससे स्पष्ट ही यह ज्ञात होता है कि सांख्य और योग इन दोनों संप्रदायों का उद्भव महाभारत काल में ही हो चुका था और वेद तथा पाशुपत आदि दूसरे प्राचीन धर्म–संप्रदाओं के साथ उनका उल्लेख होने के कारण उनकी प्राचीनता में भी संदेह की गुंजाइश नहीं रहती।

सांख्यज्ञान की व्यापक भावना को लक्ष्य करके ''महाभारत'' में एक श्लोक है, जिसका आशय है 'हे नरेन्द्र, जो गलत ज्ञान महान व्यक्तियों में वेदों के भीतर तथा योगशास्त्रों में देखा जाता है और पुराणों में भी जिसका उल्लेख विभिन्न प्रकार से हुआ है वह सभी सांख्य से आया'–

ज्ञानं महद्यद्धि महत्सु राजन् वेदेषु सांख्येषु तथैव योगे।
मरयापि दृष्टं विविधे पुराणे सांख्यागतं तान्निखिलं नरेन्द्रं।।

अक्षपाद गौतम और कणाद कश्यप द्वारा न्याय तथा वैशेषिक, दो दर्शन संप्रदायों का प्रवर्तन मौर्य युग(400ई.पू.) में ही हो चुका था। 'चरक संहिता' पर अंकित न्याय–वैशेषिक प्रभावों से यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि उक्त दोनों ईसा की प्रथम शताब्दी से भी बहुत पहले के है।

पूर्व मीमांसा की रचना उत्तर मीमांसा के पहले होते हुए भी जैमिनी और व्यास सैद्धांतिक प्रतिपादन में एक–दूसरे को उद्धृत करते पाये जाते हैं। जिससे विदित होता है कि उद्धृत करने की यह शैली बाद की है। उसको शिष्य–परम्परा ने चलाया। इसी शिष्य परम्परा के द्वारा समय–समय पर उक्त दोनों दर्शनों का संशोधन, संपादन और परिवर्तन–परिवर्द्धन होता गया। पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा का जो स्वरूप आज हमारे सामने विद्यमान है उसके अंतिम संस्करण बहुत पीछे, संभवतः मौर्य युग (400 ई.पू)से सतवाहन युग (200 ई.पू.) तक निरंतर होते रहे। जहां तक जैमिनी और व्यास का प्रश्न है, वे महाभारतकालीन ऋषि थे।

योग दर्शन के प्रवर्तक महामुनि पतंजलि हुए। पतंजलि नाम की नाना रूपात्मकता को देखकर यह निश्चय करना कठिन हो जाता है कि उनमें से योगदर्शन के रचयिता पतंजलि कौन थे। विद्वानों ने योगसूत्रों को षड्दर्शनों में प्राचीन बताया है और यह सिद्ध किया है कि उसकी रचना बौद्धयुग (600 ई.पू.) से पहले हो चुकी थी। यदि यह सही है तो यह मानना आवश्यक है कि 'महाभाष्य' के रचयिता प्रसिद्ध व्याकरणविद् पतंजलि, जिनका स्थितिकाल 400 ई.पू. में निर्धारित है 'योगसूत्र' पर जो भाष्य लिखा गया उसके रचयिता व्यास, कृष्ण, द्वैपायन, वेदव्यास से भिन्न थे और वे बौद्धकाल में हुए। कनिष्क के समय (प्रथम श. ई) तक व्यासभाष्य प्रकाश में आ चुका था।

वैदिक युग के ब्राम्हण ग्रंथों के पुरोहित आचार्यों ने जिस स्थूल कर्मवाद को प्रचलित किया था उसका भरपूर विरोध उसी युग में उपनिषत्कार ऋषियों ने किया। तदनन्तर महावीर और बुद्ध इन दो समाज सुधारक महात्माओं एवं संतो और विशेषतः उनके अनुवर्त आचार्यों ने अपनी सैद्धांतिक स्थापनाओं की प्रतिष्ठा के लिए एक ओर तो उपनिषदग्रंथों के ऊंचे आदर्शों को लेकर अपनी स्थिति को अधिक सुदृढ़ किया और दूसरी ओर उन्होंने वैदिक धर्म की बुराईयों का प्रचार कर समाज को अपने पक्ष में कर लिया, किन्तु इसके संबंध में यह जान लेना आवश्यक है कि महावीर स्वामी और बुद्धदेव ने जिन आदर्शों को रखा था, अपने मूलरूप में वे किसी भी धर्म के विरोधी और किसी के भी सिद्धातों की आलोचना से संबंद्ध नहीं थे। जैन और बौद्ध धर्मों में वैयाक्तिक रूप में विरोधी संप्रदाय और आलोचनात्मक प्रक्रिया को उत्तरवर्ती आचार्यों ने प्रतिष्ठित किया। भारत का यह युग बौद्धिक संघर्ष और विचार–संक्रान्ति का अपूर्व युग रहा है। जैनाचार्य और बौद्धाचार्यों पे अपने सिंद्धातों की प्रतिष्ठा के लिये ज्यों भी खुले आमवैदिक धर्म की भर्त्सना की, कि एक साथ ही वैदिक धर्मानुयायी समाज जाग उठा। फलतः जो हिन्दू दर्शन अब तक बड़ी ही मन्दगति से चल रहे थ। वे विरोधियों के प्रतिकार के लिए द्विगुणित उत्साह से आगे बढ़े। यह द्वादश दर्शन संप्रदायों के चरमोत्कर्ष का युग था।

पहले संकेत किया गया है कि दर्शनों का उद्भव वैदिक युग में ही हो चुका था। श्रुतिकाल की प्रजामूलक और वैदिक युग में इसका प्रमाण है। वैदिक कालीन तर्क मूलक तत्वज्ञान से ही षड्दर्शनों की नींव पड़ी।

विषय की दृष्टि से भारतीय दर्शन की विकास–परम्परा को उद्भव, भाष्य और वृत्ति इन तीन रूपों में विभाजित किया जा सकता है। भारतीय दर्शन का सब से महत्वपूर्ण युग भाष्य ग्रंथों की रचना का रहा है।

इस प्रकार भारतीय दर्शन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का परिचय प्राप्त हो जाने पर विदित होता है कि भारत में सहस्त्रों वर्षों पूर्व से चिंतन की धारा अविरत रूप में आगे बढ़ती गयी और उससे भारत की विचार–भूमि सदैव उर्वर बनी रही।

यह सही है कि भारतीय दर्शन के कई सम्मत हैं, उनमें काफी मतभेद है। परंतु फिर भी उपमें कई समानताऐं भी है। कुछ ऐसे विचार बिन्दु है जहां वे एक मत है मुख्य विशेषताऐ ये है–

1. **विचारों की स्वतंत्रताः** भारतीय दर्शन की सबसे बडी विशेषता यह है कि यहां बिना किसी दबाव के चिंतन हुआ है। इसलियें परस्पर विरोधी विचार भी साथ–साथ प्रस्तुत हुए है। विरोधी विचारों को भारतीय दर्शनिकों ने कभी तुच्छ नहीं समझा बल्कि अपना पक्ष प्रस्तुत करने के पहले अपने पर लगाए गये आरोपों का खण्डन करते और फिर आगे बढ़ते थे। शास्त्रार्थ में पराजित विचारक विरोधी के दर्शन की स्वस्थ परम्परा थी। इसमें शास्त्रार्थ में पराजित विचारक विरोधी विजयी के दर्शन को सहर्ष अंगीकार कर लेते थे। ऐसे शास्त्रार्थ राजदरबार में भी होते थे और विजयी के मतों को राजा स्वयं भी स्वीकार करता था। यह बात हमें पाश्चात्य दर्शनों में नहीं दिखती। इससे वैचारिक विविधता भी आई।
2. **आध्यात्मिक शांतिः** पाश्चात्य दर्शन तो आश्चर्य, संदेह से शुरू होता है। परंतु भारतीय दर्शन का आरंभ बिन्दु आध्यात्मिक अशांति है। यह निराशा से शुरू होता है। दुःखों का क्या कारण है? अज्ञान क्या है? इन्हें कैसे दूर किया जा सकता

है और इनसे निवृत्ति कैसे पाई जा सकती है? सारे भारतीय दर्शन सम्मत इसकी खोज में लगे हुए है। सभी अपने–अपने ढंग से इनकी निवृत्ति का मार्ग दर्शाते है। अर्थात् भारतीय दर्शन का आरंभ बिन्दु निराशा तो चरम बिन्दु आशा है क्योंकि ये आध्यात्मिक शांति का मार्ग देते है।

3. **मोक्ष को महत्वः** भारतीय दर्शन केवल जिज्ञासा की तृप्ति के लिए दर्शनिक चिंतन नहीं करता तो वह जगत्, जीव, ईश्वर आदि की सत्ता पर विचारकर अपने अज्ञान को दूर करता ही है और इसके द्वारा वह जिस सत्य का साक्षात्कार करता है। उसे जीवन में उतारना भी चाहता है। दर्शन उसके लिए जीवन दर्शन है जो उसे सत्य की जानकारी के साथ सत्य की उपलब्धि भी कराता है। भारतीय दर्शन न केवल इस जगत में आने वाली मृत्यु से वरन् अगले जन्मों में होने वाली मृत्युओं से और इस तरह संपूर्ण जन्म–मरण के चक्र से ही मुक्ति का आस्वासन देता है। इसे ही मोक्ष कहा गया है। वस्तुतः मोक्ष विषयक चिंतन ही समस्त भारतीय दर्शन की धुरी है। सारे भारतीय दर्शनों का लक्ष्य मुक्ति की प्राप्ति है, एकमात्र चार्वाक दर्शन को छोड़कर।
4. **सैद्धांतिक ज्ञानः** भारतीय दर्शन केवल व्यवहारिक ही नहीं है, यह पाश्चात्य दर्शन की भांति सैद्धांतिक भी है। यह ज्ञान मीमांसा, तत्वमीमांसा, आध्यात्मशास्त्र, तर्कशास्त्र जैसे सैद्धांतिक पहलुओं का अध्ययन भी करता है। दर्शन के सैद्धांतिक पहलुओं का अध्ययन किसी प्रकार भी घटिया नहीं है। यह अध्ययन उतना ही श्रेष्ठ है जितना की व्यवहारिक अध्ययन।
5. **आत्मा के अस्तिव में विश्वासः** अधिकांश भारतीय दर्शन ''आत्मा अस्तित्व'' में विश्वास रखते है जो शरीर से पृथक, अजर अमर है, और जो मनुष्य का वास्ताविक में है। मनुष्य अपने इस वास्ताविक स्वरूप को जानकर मोक्ष की प्राप्ति कर सकता है। इसके विपरित शरीर और मन को 'मै' मानकर वह तरह–तरह के दुःख उठाता है। सच कहा जाए तो भारतीय दर्शन मनुष्य को उसके वास्ताविक रूप से परिचित कराने काएक प्रयत्न है। वेदान्त दर्शन में तो आत्मा को 'ब्रह्म' ही कह दिया गया है। यह विचार मनुष्य को उसकी पहचान से अवगत कराता है कि वह ''अमृतस्य पुत्र'' है परमात्मा का ही अंश है उसी का एक रूप है अवथा वही है।
6. **कर्मफल सिंद्धातः** ''जो जैसा बोता है वैसा काटता है'' यह अटल सत्य है। ''बबूल बोकर आम की आशा करना व्यर्थ है।'' कर्म अपना समुचित फल अवश्य ही देता है। हमारी वर्तमान उपलब्धि, चाहे वह सुखमयी हो या दुःखमयी हमारे भूत के कर्मो का ही फल है और भविष्य में हमें जो प्राप्त होने वाला है उसका निर्धारण हमारे वर्तमान के कर्म करेगें। चार्वाक दर्शन को छोड़कर सभी शेष दार्शनिक चाहे वह वैदिक हो या अवैदिक, कर्मफल के सिद्धांत पर गहरी आस्था रखते है। जैन, बौद्ध दर्शन जो ईश्वर को नहीं मानते, वे कर्मफल सिद्धांत पर पर्याप्त बल देते है।
7. **पुनर्जन्म में आस्थाः** भारतीय दर्शन का यह सिद्धांत न केवल इस जीवन को वरन् मृत्यु के बाद के जीव को भी संवारने का संदेश देता है क्योंकि इस सिद्धांत के अनुसार कर्मफल मृत्यु के साथ ही समाप्त नहीं हो जाते, वे मृत्यु के पश्चात् भी जीवात्मा के साथ लगे रहते है और अगले जन्म में जीव के सुख–दुःख का हेतु बनते है। शरीर और मन नश्वर होने के कारण उसे तब तक जन्म लेना पड़ता है जब तक वह कर्मों का फल भोग नहीं लेता। कर्मफल का सिद्धांत एक तरह से दुष्कर्म करने वाले को चेतावनी भी देता है कि अपने बुरे कर्मों से मृत्यु के बाद भी वह नहीं बचेगा, वे अवश्य अपना फल उसे देगें। चार्वाक और बौद्ध दर्शन छोड़कर शेष सभी भारतीय दार्शनिक मत आत्मा के पुनर्जन्म को मानता है।
8. **आनंद को महत्वः** भारतीय दर्शन 'मुक्ति' में न केवल सभी प्रकार के दुःख, भय, संदेह, आदि से मुक्ति की बात करता है वरन् उस आनंद की प्राप्ति की भी आशा दिलाती है जो असीम है, अपरिमित है, नित्य है जिसके सामने न केवल सांसारिक दुःख वरन सांसारिक सुख भी तुच्छ हो जाते है।
9. **परमात्मा के अस्तित्व में विश्वासः** नास्तिक दर्शनों को छोड़कर सभी आस्तिक दर्शन परमात्मा के अस्तित्व में विश्वास रखते है। इसको निगुर्ण, ब्रम्ह, परमात्मा आदि कई नामों से पुकारा जाता है। जैसा कि उपनिषद् में कहा गया है कि ब्रह्म एक है परंतु सांसारिक लोग उसको अनेक नामों से पुकारते है। चार्वाक दर्शन पूर्ण रूप से परमात्मा के अस्तित्व का खण्डन करता है। बौद्ध दर्शन परमात्मा के अस्तित्व को तो स्वीकार करता है, परंतु आस्तिक दर्शनों के भांति वह परमात्मा को सृष्टि का कर्ता, धर्मा और हर्ता नहीं मानता। इसलिये आम जैनी परमात्मा के बारे में मौन है।
10. **जगत् में विश्वासः** बौद्ध दर्शन एवं अद्वैत वेदान्त दर्शन को छोड़ सभी भारतीय दर्शन जगत् के यथार्थ रूप को स्वीकार करते है। उनके अनुसार इसी जगत् में रहकर ही मनुष्य अपना जीवन व्यतीत करता है और मोक्ष प्राप्त करता है। अद्वैत वेदान्त दर्शन भी व्यवहारिक दृष्टि से जगत के अस्तित्व को स्वीकार करता है परंतु पारमार्थिक दृष्टि से ही वह जगत को माया या प्रपंच कहता है।
11. **दुःख का कारण अविद्याः** भारतीय दर्शन में जन्म से लेकर हमारे समस्त दुःखों और कर्मफल के रूप में अगले जन्म में मिलने वाले दुःखों का भी कारण अविद्या को बताया गया है। वैदिक–अवैदिक सभी दर्शन इस विषय में एकमत है, कि अविद्या ही सभी दुःखों की जड़ है। गौतम बुद्ध ने ''जरा–मरण'' के हेतु की खोज में कार्य–कारण की 12 कड़ीयों की खोज की जो एक श्रृंखला पाते है, उसमें अंतिम (अथवा प्रथम) 'अविद्या' को बताते है। इस तरह अविद्या ही सभी दुःखों की जड़ है।
12. **अविद्या का नाराः** अविद्या अनादि होते हुए भी अनन्त नहीं है। विद्या अथवा ज्ञान के द्वारा इसका अन्त हो सकता है। यह बात तो सभी दार्शनिक मानते है परंतु यह ज्ञान क्या है? इस विषय में भारतीय दार्शनिकों को में मतभेद है। सांख्यदर्शन पुरूष और प्रकृति के वास्ताविक स्वरूप के ज्ञान से है। न्याय दर्शन में तत्व ज्ञान का अर्थ प्रमेयों ,पदार्थों तथा प्रमाणों के ज्ञान से लिया जाता है।
13. **दर्शन एवं धर्मः** चार्वाक दर्शन के अतिरिक्त सभी भारतीय दार्शनिक सिद्धांत इस तथ्य पर एक मत है कि मोक्ष सर्वोच्य पुरूषार्थ प्राप्ति के लिये नैतिक नियमों अर्थात् धर्म का पालन अनिवार्य है। काम, मोह, लोभ, अहंकार, द्वेष पर नियंत्रण रखना अनिवार्य है। और यह नियंत्रण धर्म या नैतिक नियमों के द्वारा ही संभव है। यह देखना धार्मिक कर्तव्य है कि जो इच्छा हमें आनंद दे रही है। क्या वे किसी अन्य को तो दुःख नहीं पहुँचा रही है? निष्काम कर्म योग सर्वश्रेष्ठ धर्म है वैसे भी सारे भारतीय धर्मों या नैतिक नियमों का आधार कोई न कोई दर्शन अवश्यमेव है।
14. **वेदों में विश्वासः** भारतीय दर्शन सभी आस्तिक सिद्धांत वेदों में विश्वास एवं श्रृद्धा रखते है। वेद भारत के आदि ग्रंथ है। भारतीय दर्शन, संस्कृति, धर्म, सभ्यता, साहित्य वेदों से बहुत प्रभावित हुआ है। दर्शन पर वेदों का बहुत प्रभाव पडा है। मीमांसा दर्शन और वेदान्त दर्शन तो वेद वाक्यों पर ही आधारित है, ये वेदों को ईश्वरीय अर्थात् अपौरूषेय रचनाऐं मानते है। वेद चार है–ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। चार्वाक, बौद्ध दर्शन, जैन दर्शन ही वेद विरोधी है।

15. **भारतीय दर्शन समन्वयवादी हैः** एक ओर भारतीय दर्शन बौद्धिक, तार्किक एवं आध्यात्मिक है। दूसरी ओर इसमें सृष्टि, जीवन आचरण, ज्ञान आदि का भी समन्वय है। वही पर तीसरी तरफ वह केवल व्यक्तिगत दर्शन न होकर सामाजिक, राजनैतिक और धर्म दर्शन है। महात्मा बुद्ध, महावीर वर्धमान, शंकराचार्य, बृहस्पति गुरू आदि महान् दार्शनिक होते हुए भी समाज सुधारक भी थे।
16. **मनोवैज्ञानिक आधारः** भारतीय दर्शन मानवीय व सामाजिक मनोवैज्ञानिक तथ्योंऔर सच्चाईयों पर आधारित है। पंतजलि का योगदर्शन स्पष्ट रूप से एक मनो– वैज्ञानिक ही है। जिसमें सूक्ष्म दृष्टि से शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक क्रियाओं का विवेचन किया गया है। वेदान्त दर्शन में आत्मा की जग्रत, स्वप्न और तुरीय अवस्थाओं तथा चैतन्य का सूक्ष्म अविवेचन किया गया है।
17. **प्रमाणः** यथार्थ ज्ञान या प्रमा के साधन को प्रमाण कहा जाता है। प्रत्येक भारतीय दार्शनिक सिद्धांत निश्चित रूप से किसी न किसी प्रमाण या प्रमाणों को स्वीकार करता है। और उसी प्रमाण को ही अपने दर्शन का आधार बनाता है। भारतीय दर्शन में प्रमाणों की संख्या 1 से 10 तक दी है। परंतु मुख्य प्रमाण–प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति, अभाव या अनुपलब्धि है।
18. **भारतीय दर्शन प्रगतिशील हैः** भारतीय दार्शनिक सिद्धांतो में जब किसी एक सिद्धांत का अत्याधिक प्रचार हुआ है तो उसके प्रतिवर्ती पक्ष की भी स्थापना हुई। जड़वाद आध्यात्मवाद, द्वैत–अद्वैतवाद, द्वैता–द्वैत, विशिष्टाद्वैतवाद आदि भिन्न–भिन्न दार्शनिक सिंद्धातों की क्रिया–प्रतिक्रिया के मध्य नये–नये दार्शनिक विचार समाने आते रहे है। प्रगतिशीलता की इसी विशेषता के कारण भारतीय दर्शन का निरंतर विकास होता रहा है।
19. **आध्यात्मिक संतोषः** दर्शन का जन्म मात्र जिज्ञासा से नहीं वरन् आध्यात्मिक संतोष पाने की इच्छा से हुआ है। वास्तव में संसार की असरसता, क्षणभंगुरता और दुःख उसे एक सातत्व, स्थायित्व तथा आनंद की खोज की ओर ले जाते है। इस खोज में सभी भारतीय दर्शन, आत्मदर्शन, आत्मसाक्षात्कार की ओर मुड़ते है। यह आध्यात्मवाद बुद्धि को नहीं अपितु अंतर दर्शन को अधिक महत्व देता है।

संदर्भ सूचि

1. भारतीय दर्शनः रूपाली श्रीवास्तव।
2. भारतीय दर्शन का सामान्य विवेचनः डॉ. इकबाल नारायण चोपड़ा।
3. भारतीय दर्शनः डॉ. शोभा निगम।
4. अद्वैततत्व मीमांसाः डॉ. सुधा जैन।
5. भारतीय दर्शनः वाचस्पति गैरेला।
6. भारतीय दर्शनः उमेश मिश्र
7. भारतीय दर्शन के मुलतत्वः डॉ. रामनाथ शर्मा
8. भारतीय दर्शनों में क्या है ?: डॉ. प्रवेश सक्सेना
9. भारतीय दर्शनः केदारनाथ सिंह
10. योग मनोविज्ञानः डॉ. शान्तिप्रकाश आत्र्येय